IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिन्दू: एक सामाजिक-सांस्कृतिक एवं सभ्यतागत विश्लेषण

जय प्रकाश भट्ट

1. सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोध-पत्र "हिन्दू" अवधारणा का वैज्ञानिक, तार्किक एवं सभ्यतागत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि "हिन्दू" शब्द धर्म, संस्कृति, सभ्यता, जीवन-दृष्टि अथवा इन सभी के समन्वित रूप का सूचक है। इस शोध में ऐतिहासिक, पाठ-विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक पद्धतियों के माध्यम से वैदिक, उपनिषदिक, पुराणिक, अभिलेखीय और विदेशी स्रोतों का सम्यक् अध्ययन किया गया है। "हिन्दू" शब्द की व्युत्पत्ति सामान्यतः 'सिंधु' से मानी जाती है, जिसका प्रारंभिक रूपांतरण प्राचीन फारसी प्रयोगों में दिखाई देता है। भारतीय ग्रंथों में इस भूभाग को 'भारतवर्ष', 'आर्यावर्त' और 'जम्बूद्वीप' जैसे नामों से अभिहित किया गया है। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसे आदर्श हिन्दू चिंतन की उदारता, सहिष्णुता और वैश्विक मानवतावाद को अभिव्यक्त करते हैं। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि "हिन्दू" केवल एक धर्म नहीं, बल्कि एक बहुआयामी सांस्कृतिक, दार्शनिक और सभ्यतागत परंपरा है, जिसने भारतीय समाज को दीर्घकाल तक विचार, आचार और सामाजिक संरचना के स्तर पर प्रभावित और एकसूत्रित किया है।

2. **प्रमुख शब्द** (Keywords)

हिन्दू, हिन्दू धर्म, संस्कृति, सभ्यता, सनातन धर्म, भारतीय ज्ञान परंपरा, वेद, वेदान्त, सिंधु।

3. **भूमिका** (Introduction)

हिन्दू" शब्द भारतीय सभ्यता, संस्कृति और दर्शन से संबद्ध एक बहुआयामी तथा ऐतिहासिक रूप से विकसित अवधारणा है। यह केवल धार्मिक पहचान का सूचक नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन-दृष्टि, ज्ञान-परंपरा और सांस्कृतिक निरंतरता का भी प्रतीक है। भारतीय चिंतन में धर्म को जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक संतुलन का आधार माना गया है। महाभारत में कहा गया है—"धारणाद् धर्म इत्याहुः" (महाभारत, कर्णपर्व), अर्थात् जो धारण करता है वही धर्म है। इस दृष्टि से हिन्दू परंपरा केवल पूजा-पद्धति का विधान नहीं, बल्कि मानव जीवन के संतुलित विकास का आधार बनती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से "हिन्दू" शब्द की उत्पत्ति 'सिंधु' से मानी जाती है, जिसका ध्वन्यात्मक रूपांतरण प्राचीन फारसी में 'हिन्दू' के रूप में हुआ। प्रारंभ में यह शब्द भौगोलिक पहचान का सूचक था, जो धीरे-धीरे सांस्कृतिक और धार्मिक अर्थ ग्रहण करता गया (Thapar, 2002; Lorenzen, 1999)। आकेमेनिड शासक दारियस के अभिलेखों, यूनानी स्रोतों तथा बाद के अरब-फारसी विवरणों में इस क्षेत्र को 'हिंद' या 'इंडिया' के रूप में संबोधित किया गया। भारतीय ग्रंथों में यही भूमि 'भारतवर्ष', 'आर्यावर्त' और 'जम्बूद्वीप' के रूप में वर्णित है। "हिन्दू" की परिभाषा आज भी विद्वानों के बीच विमर्श का विषय है। क्या यह धर्म है, संस्कृति है, सभ्यता है या जीवन-पद्धति? आधुनिक अध्येताओं के अनुसार हिन्दू धर्म किसी एक पैगंबर, एक ग्रंथ या एकरूप सिद्धांत पर आधारित न होकर विविध दार्शनिक परंपराओं, आस्थाओं और अनुष्ठानों का समन्वित स्वरूप है (Flood, 1996)।

आचार्य एवं विभागाध्यक्ष , समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा गढवाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढवाल उत्तराखंड

डी. एन. लोरेन्ज़न का मत है कि 'हिन्दू' शब्द का धार्मिक अर्थ मध्यकालीन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं में अधिक स्पष्ट हुआ (Lorenzen, 1999), जबकि डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने इसे सत्य की निरंतर खोज पर आधारित जीवन-दर्शन कहा (Radhakrishnan, 1927)। स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म को सहिष्णु और सार्वभौमिक आध्यात्मिक परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया (Vivekananda, 1893)। विल ड्यूरेंट और अर्नोल्ड टॉयनबी जैसे विदेशी विद्वानों ने भारतीय सभ्यता को विश्व की प्राचीनतम और महत्त्वपूर्ण परंपराओं में स्थान दिया है (Durant, 1935; Toynbee, 1961)।

समकालीन विश्व, जहाँ सांस्कृतिक संघर्ष, पर्यावरणीय संकट और नैतिक विघटन जैसी चुनौतियाँ उपस्थित हैं, वहाँ हिन्दू दर्शन की समन्वयवादी दृष्टि—अहिंसा, सहिष्णुता, प्रकृति-सम्मान और समभाव—विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होती है। भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनरुत्थान और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में भी इस विषय का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। अतः यह शोध-पत्र इस मूल प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास करता है कि "हिन्दू" को किस प्रकार समझा जाए—धर्म, संस्कृति, सभ्यता, जीवन-पद्धति या इन सभी के समन्वित रूप में।

4. शोध के उद्देश्य और प्रश्न (Objectives and Research Questions)

प्रस्तुत शोध का प्रथम उद्देश्य "'हिन्दू' शब्द" की उत्पत्ति, उसके भाषिक रूपांतरण, ऐतिहासिक प्रसार तथा अर्थ-विकास का अध्ययन करना है। उपलब्ध प्रमाण संकेत करते हैं कि "हिन्दू" शब्द का प्रारंभिक प्रयोग किसी एक धार्मिक समुदाय के लिए नहीं, बल्कि एक भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्र के निवासियों के लिए हुआ था। आकेमेनिड सम्राट दारियस के अभिलेखों में 'Hinduš' शब्द का प्रयोग भारतीय भूभाग के संदर्भ में मिलता है (Kent, 1953; Thapar, 2002)। बाद में यूनानी लेखकों ने 'Indos' और 'India' जैसे रूप अपनाए, जबकि अरबी और फ़ारसी परंपराओं में 'अल-हिंद' तथा 'हिंदुस्तान' जैसे पद प्रचलित हुए (Herodotus, trans. Rawlinson, 1858; Al-Biruni, 1910)। अतः शोध का एक मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि "हिन्दू" शब्द का मूल अर्थ क्या था और वह समय के साथ कैसे विकसित हुआ।

दूसरा उद्देश्य हिन्दू अवधारणा का सांस्कृतिक, दार्शनिक और सभ्यतागत विश्लेषण करना है। "हिन्दू" को केवल धर्म के रूप में सीमित कर देना उसकी बहुआयामी प्रकृति को छोटा कर देता है, क्योंकि इसके भीतर दर्शन, आस्था, संस्कार, अनुष्ठान, सामाजिक व्यवहार और जीवन-मूल्यों की विविध धाराएँ समाहित हैं। गेविन फ्लड के अनुसार हिन्दू धर्म ऐतिहासिक रूप से विकसित विविध धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं का समुच्चय है (Flood, 1996), जबकि राधाकृष्णन ने इसे जीवन-दर्शन कहा है (Radhakrishnan, 1927)। इसलिए यह शोध इस प्रश्न की पड़ताल करता है कि हिन्दू को सबसे उपयुक्त रूप में किस श्रेणी में रखा जाए।

तीसरा उद्देश्य भारतीय आंतरिक स्रोतों और बाह्य ऐतिहासिक स्रोतों के अंतर्संबंधों का अध्ययन करना है। भारतीय ग्रंथों में इस भूभाग को 'भारतवर्ष', 'आर्यावर्त' और 'जम्बूद्वीप' के रूप में संबोधित किया गया है। उदाहरणार्थ, विष्णु पुराण में 'भारतवर्ष' का और मनुस्मृति में 'आर्यावर्त' का वर्णन मिलता है (विष्णु पुराण 2.3.1; Manusmriti 2.22)। इन आंतरिक साक्ष्यों की तुलना जब फ़ारसी, यूनानी और अरब स्रोतों से की जाती है, तो स्पष्ट होता है कि भारतीय आत्म-पहचान और बाह्य नामकरण की प्रक्रियाएँ एक-दूसरे से जुड़ती चली गईं (Thapar, 2002; Lorenzen, 1999)।

इन्हीं उद्देश्यों के आलोक में इस अध्ययन के दो केंद्रीय शोध-प्रश्न हैं—पहला, "हिन्दू" क्या है: धर्म, संस्कृति, सभ्यता या जीवन-पद्धति? दूसरा, "'हिन्दू' शब्द" का मूल अर्थ और ऐतिहासिक विकास क्या है? ये प्रश्न परिभाषात्मक होने के साथ-साथ सिद्धांतगत भी हैं, क्योंकि इनके उत्तर के आधार पर हिन्दू अवधारणा की अकादमिक समझ निर्मित होती है। प्रस्तुत शोध इन्हीं प्रश्नों का स्रोत-आधारित, तार्किक और संतुलित उत्तर देने का प्रयास करता है।

5. शोध-पद्धति (Research Methodology)

प्रस्तुत शोध पत्र में "हिन्दू' अवधारणा" के सम्यक् अध्ययन के लिए ऐतिहासिक, ग्रंथ-विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक तथा अंतर्विषयी दृष्टिकोणों का समन्वित उपयोग किया गया है। ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से "हिन्दू" शब्द की उत्पत्ति, विकास और उसके सांस्कृतिक-सभ्यतागत संदर्भों का अध्ययन किया गया।

ग्रंथ-विश्लेषणात्मक (Textual Analysis) विधि द्वारा वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, पुराण, स्मृतियों तथा अन्य शास्त्रीय ग्रंथों का समालोचनात्मक परीक्षण किया गया। तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत भारतीय और विदेशी स्रोतों का विश्लेषण कर अवधारणा के विभिन्न आयामों को समझने का प्रयास किया गया। अंतर्विषयी दृष्टिकोण के तहत इतिहास, दर्शन, समाजशास्त्र, धर्म-अध्ययन, भाषाविज्ञान और सांस्कृतिक अध्ययन से संबंधित अवधारणाओं को जोड़ा गया। यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित गुणात्मक (Qualitative) शोध है, जिसमें प्रामाणिक पुस्तकों, शोध-पत्रों, अभिलेखों और विश्वसनीय दस्तावेजों के आधार पर तार्किक और तथ्यपरक निष्कर्ष निर्मित किए गए हैं।

6. साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

"हिन्दू" अवधारणा के ऐतिहासिक, दार्शनिक और सभ्यतागत स्वरूप को समझने के लिए प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों, भारतीय विद्वानों तथा विदेशी अध्येताओं के विचारों का अध्ययन आवश्यक है। भारतीय स्रोतों में वेद, उपनिषद, भगवद्गीता और पुराण आधारभूत माने जाते हैं। उपनिषदों में ब्रह्म, आत्मा और मोक्ष की अवधारणाएँ हिन्दू दर्शन की आध्यात्मिक नींव रखती हैं, जिसका विस्तृत विवेचन डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने The Principal Upanishads में किया है (Radhakrishnan, 1953)। भगवद्गीता कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के माध्यम से धर्म और जीवन के संतुलन का मार्ग प्रस्तुत करती है, जबकि विष्णु पुराण भारतीय सभ्यता, भूगोल और सांस्कृतिक स्मृति को व्यक्त करता है, विशेषतः "भारतवर्ष" की अवधारणा के माध्यम से (विष्णु पुराण 2.3.1)।

आधुनिक भारतीय चिंतकों में स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म को सहिष्णु, सार्वभौमिक और उदार आध्यात्मिक परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया (Vivekananda, 1893/1998)। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने The Hindu View of Life में इसे सत्य की निरंतर खोज पर आधारित विकसित होती हुई आध्यात्मिक परंपरा के रूप में प्रतिपादित किया (Radhakrishnan, 1927)। इतिहासकार आर. सी. मजूमदार ने भारतीय संस्कृति की प्राचीनता और निरंतरता पर बल देते हुए उसे विश्व की दीर्घजीवी सभ्यताओं में स्थान दिया (Majumdar, 1951)।

विदेशी स्रोतों में अल-बिरूनी की कृति Alberuni's India विशेष महत्त्व रखती है, जिसमें भारतीय समाज, धर्म और दर्शन का विस्तृत वर्णन मिलता है (Al-Biruni, 1910)। मैक्स मूलर ने वेदों और अन्य ग्रंथों के अध्ययन के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा को वैश्विक पटल पर प्रतिष्ठित किया (Müller, 1882), जबकि मोनियर विलियम्स ने हिन्दू धर्म को एक बहुविध और व्यापक धार्मिक प्रणाली के रूप में व्याख्यायित किया (Monier-Williams, 1877)। विल ड्यूरेंट ने भारतीय सभ्यता की प्राचीनता और आध्यात्मिक योगदान को विशेष महत्व दिया (Durant, 1935)। आधुनिक विद्वानों में गेविन फ्लड हिन्दू धर्म को विविध धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं का समन्वित रूप मानते हैं (Flood, 1996), डी. एन. लोरेन्ज़न 'हिन्दू' शब्द के ऐतिहासिक विकास को मध्यकालीन प्रक्रियाओं से जोड़ते हैं (Lorenzen, 1999), और रिचर्ड किंग औपनिवेशिक संदर्भ में "Hinduism" की आधुनिक संरचना का विश्लेषण करते हैं (King, 1999)।

उपरोक्त साहित्य से स्पष्ट होता है कि हिन्दू अवधारणा का विकास किसी एक ग्रंथ या समय का परिणाम नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रिया है, जिसमें धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक और सभ्यतागत तत्वों का क्रमिक समन्वय हुआ है। यही साहित्य प्रस्तुत शोध के लिए वैचारिक और तथ्यात्मक आधार प्रदान करता है।

7. 'हिन्दू' शब्द की व्युत्पत्ति और ऐतिहासिक विकास

"हिन्दू" शब्द की उत्पत्ति और उसका ऐतिहासिक विकास भारतीय सभ्यता के अध्ययन का एक केंद्रीय विषय है। यह शब्द केवल धार्मिक पहचान तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समय के साथ भौगोलिक, सांस्कृतिक और सभ्यतागत पहचान के रूप में विकसित हुआ। इसकी व्युत्पत्ति सामान्यतः संस्कृत शब्द 'सिंधु' से मानी जाती है, जो प्राचीन भारत की एक प्रमुख नदी और उसके आसपास के क्षेत्र का सूचक था। ऋग्वेद में 'सिंधु' का उल्लेख एक महान नदी और सभ्यता के प्रतीक के रूप में मिलता है (ऋग्वेद 10.75)।

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से प्राचीन फारसी में 'स' ध्वनि का 'ह' में रूपांतरण सामान्य माना जाता है। इसी कारण 'सिंधु' का रूप 'हिन्दु' हुआ। आकेमेनिड सम्राट दारियस प्रथम के अभिलेखों में 'Hinduš' शब्द का प्रयोग सिंधु प्रदेश के लिए मिलता है, जिसे 'हिन्दू' शब्द का प्राचीन अभिलेखीय प्रमाण माना जाता है (Kent, 1953)। प्रारंभ में यह शब्द भौगोलिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ था। रोमिला थापर के अनुसार "हिन्दू" शब्द का आरंभिक प्रयोग सिंधु नदी के पार रहने वाले लोगों के लिए हुआ और इसका धार्मिक अर्थ बाद में विकसित हुआ (Thapar, 2002)। डी. एन. लोरेन्ज़न ने भी इसे दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम माना है (Lorenzen, 1999)। फारसी स्रोतों से यह शब्द यूनानी जगत में पहुँचा, जहाँ इसे 'Indos' और 'India' के रूप में अपनाया गया। हेरोडोटस के लेखन में भारत का उल्लेख इसी रूप में मिलता है (Herodotus, trans. Rawlinson, 1858)। मध्यकाल में अरब और फारसी विद्वानों ने भारत को 'अल-हिंद' कहा। अल-बिरूनी ने अपनी कृति Alberuni's India में भारतीय समाज, धर्म और दर्शन का विस्तृत वर्णन करते हुए 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग भारत के निवासियों के लिए किया (Al-Biruni, 1910)। बाद की फारसी परंपरा में 'हिंदुस्तान' शब्द विकसित हुआ, जिसका प्रयोग दिल्ली सल्तनत और मुगलकालीन साहित्य में भारतीय उपमहाद्वीप की भौगोलिक और सांस्कृतिक पहचान के रूप में मिलता है। अबुल फ़ज़ल ने आइने-अकबरी में 'हिंदुस्तान' को एक विशिष्ट सांस्कृतिक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया (Abul Fazl, 1927)।

आधुनिक काल में यूरोपीय विद्वानों और औपनिवेशिक प्रशासन ने 'Hinduism' शब्द को एक संगठित धार्मिक परंपरा के रूप में वर्गीकृत किया। मैक्स मूलर और मोनियर विलियम्स जैसे विद्वानों ने हिन्दू ग्रंथों और दर्शन के अध्ययन के माध्यम से इसे वैश्विक अकादमिक विमर्श में स्थापित किया (Müller, 1882; Monier-Williams, 1877)। इन सभी साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट होता है कि "हिन्दू" शब्द का विकास क्रमशः भौगोलिक, सांस्कृतिक और धार्मिक-सभ्यतागत पहचान की दिशा में हुआ।

8. **प्राचीन भारत के नाम और उनके प्रमाण**

प्राचीन भारत को एक ही नाम से नहीं जाना गया। अलग-अलग कालों, ग्रंथों और परंपराओं में इस भूभाग के लिए भिन्न-भिन्न नाम मिलते हैं, और प्रत्येक नाम अपने भीतर एक विशिष्ट ऐतिहासिक, सांस्कृतिक या दार्शनिक आशय रखता है। व्यापक रूप कहा जाए तो सप्त-सिंधु वैदिक सांस्कृतिक-भौगोलिक क्षेत्र का बोध कराता है, "आर्यावर्त" धर्मशास्त्रीय-सांस्कृतिक क्षेत्र का, "भारतवर्ष" सभ्यतागत आत्म-पहचान का, और "जम्बूद्वीप" भारतीय तथा बौद्ध-पुराणिक विश्वदृष्टि में इस भूभाग की व्यापक स्थिति का सूचक है।

"सप्त-सिंधु" प्राचीनतम नामों में से एक है। ऋग्वेद में "सिंधु" का उल्लेख बार-बार आया है और "सप्त-सिन्धुषु" जैसे प्रयोग यह संकेत करते हैं कि वैदिक लोगों की स्मृति में सात नदियों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। यह केवल नदी-भूगोल का उल्लेख नहीं, बल्कि उस आरंभिक सांस्कृतिक क्षेत्र का संकेत है जहाँ वैदिक स्तोत्र, देव-परंपरा और यज्ञ-जीवन विकसित हुआ। सामान्यतः इसका केंद्र उत्तर-पश्चिम भारतीय उपमहाद्वीप माना जाता है।

"आर्यावर्त" शब्द धर्मशास्त्रीय संदर्भ में मिलता है। मनुस्मृति में इसे उस भूमि के रूप में निरूपित किया गया है जो पूर्व और पश्चिम के समुद्रों के मध्य तथा हिमालय और विन्ध्य के बीच स्थित है (Manusmriti 2.22)। इस परिभाषा का आशय केवल भौगोलिक सीमांकन नहीं, बल्कि उस सांस्कृतिक क्षेत्र की पहचान भी है जहाँ वैदिक आचार और मान्यताओं को प्रतिष्ठित माना गया। इसलिए "आर्यावर्त" भारतीय परंपरा में भूगोल और आचार के संबंध को स्पष्ट करता है।

"भारतवर्ष" प्राचीन भारत का सबसे दीर्घजीवी और व्यापक नाम है। विष्णु पुराण का प्रसिद्ध श्लोक—"उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्, वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः"—भारतवर्ष को समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण स्थित उस भूभाग के रूप में परिभाषित करता है जहाँ "भारती संतति" निवास करती है (विष्णु पुराण 2.3.1)। यहाँ भूगोल, वंश-स्मृति और सांस्कृतिक एकता तीनों एक साथ जुड़े हुए हैं। यही कारण है कि आधुनिक "भारत" नाम की जड़ें भी इसी पुराणिक-ऐतिहासिक परंपरा से जुड़ती हैं।

"जम्बूद्वीप" का स्वरूप कुछ भिन्न है, यह केवल भारत-भूमि का नाम नहीं, बल्कि भारतीय और बौद्ध-पुराणिक ब्रह्मांड-चिंतन का भाग है। पुराणिक और बौद्ध परंपराओं में पृथ्वी को अनेक द्वीपों में विभाजित कर देखा गया, जिनमें जम्बूद्वीप प्रमुख था। बाद की परंपराओं में भारतवर्ष को जम्बूद्वीप का एक भाग माना गया। अशोक से संबंधित परंपराओं में भी "जम्बुदीप" जैसे पद व्यापक भूक्षेत्र के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, जिससे पता चलता है कि यह शब्द केवल मिथकीय नहीं रहा, बल्कि ऐतिहासिक राजनीतिक भाषा में भी प्रयुक्त हुआ।

इन नामों को क्रम में देखें, तो "सप्त-सिंधु" वैदिक नदी-क्षेत्र का, "आर्यावर्त" मानक सांस्कृतिक-धर्मशास्त्रीय भूक्षेत्र का, "भारतवर्ष" सभ्यतागत आत्म-पहचान का, और "जम्बूद्वीप" व्यापक ब्रह्मांडीय-भौगोलिक दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार प्राचीन भारत की पहचान एकरैखिक नहीं थी, बल्कि बहुस्तरीय थी।

यदि इन नामों के प्रमाणों को स्रोत-प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत करें, तो तीन मुख्य स्तर स्पष्ट होते हैं। पहला, वैदिक संदर्भ, जहाँ "सप्त-सिंधु" जैसी अभिव्यक्तियाँ प्राचीन नदी-आधारित भू-सांस्कृतिक संसार का संकेत देती हैं। दूसरा, धर्मशास्त्रीय और पुराणिक संदर्भ, जहाँ "आर्यावर्त" और "भारतवर्ष" जैसे नामों को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। तीसरा, ऐतिहासिक-शिलालेखीय या राजकीय संदर्भ, जहाँ "जम्बुदीप" या उसके रूपांतर व्यापक सांस्कृतिक-राजनीतिक भूक्षेत्र के अर्थ में सामने आते हैं। इस प्रकार प्राचीन भारत के ये नाम केवल साहित्यिक कल्पना नहीं थे, बल्कि वे सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक मानक और राजनीतिक चेतना का हिस्सा थे।

इस अध्ययन की दृष्टि से इन नामों का महत्व इसलिए भी है कि वे भारतीय आत्मबोध को विदेशी नामकरण से अलग पहचानने में सहायता करते हैं। जहाँ "हिंद" और "India" जैसे नाम बाहरी संपर्कों से अधिक जुड़े हैं, वहीं "भारतवर्ष" और "आर्यावर्त" जैसे नाम भारतीय परंपरा की अपनी स्मृति और स्वनाम (self-designation) को व्यक्त करते हैं। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि "हिन्दू" शब्द के व्यापक प्रयोग से पहले भी इस भूभाग की पहचान के लिए सुसंगत और प्रतिष्ठित नाम-परंपराएँ विद्यमान थीं।

9. **हिन्दू: धर्म, संस्कृति, सभ्यता या जीवन-पद्धति**?

"हिन्दू" को समझने की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि इसे किसी एक खाँचे में सीमित करना कठिन है। यदि इसे केवल धर्म कहा जाए, तो इसकी सांस्कृतिक और सभ्यतागत व्यापकता छूट जाती है; यदि केवल संस्कृति कहा जाए, तो इसका दार्शनिक और आध्यात्मिक केंद्र धुँधला पड़ सकता है; और यदि केवल सभ्यता कहा जाए, तो व्यक्ति-जीवन के आचार, साधना, मोक्ष-चिंतन और धार्मिक संवेदना का पक्ष कम स्पष्ट होता है। इसी कारण "हिन्दू" के संबंध में धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परंपरा, जीवन-पद्धति और दर्शन जैसे शब्द एक साथ प्रयुक्त होते हैं। ब्रिटानिका के अनुसार Hinduism भारत से उद्भूत एक प्रमुख धार्मिक परंपरा है, जिसमें दर्शन, विश्वास और अनुष्ठान की अनेक प्रणालियाँ सम्मिलित हैं, और यह नाम अपेक्षाकृत नया होते हुए भी अत्यंत प्राचीन परंपराओं का द्योतक है (Encyclopaedia Britannica, 2023)।

अवधारणात्मक विश्लेषण के लिए पहले धर्म, संस्कृति और सभ्यता को अलग-अलग समझना आवश्यक है। भारतीय संदर्भ में धर्म केवल "religion" का अनुवाद नहीं, बल्कि कर्तव्य, नैतिकता, सामाजिक संतुलन, पुरुषार्थ, लोकमंगल और आध्यात्मिक प्रयोजन से जुड़ी व्यापक व्यवस्था है। संस्कृति का दायरा इससे भी व्यापक है। यूनेस्को के अनुसार संस्कृति किसी समाज की आध्यात्मिक, भौतिक, बौद्धिक और भावनात्मक विशेषताओं का समग्र रूप है; इसमें जीवन-शैली, मूल्य-प्रणाली, परंपराएँ और विश्वास भी सम्मिलित होते हैं। सभ्यता सामान्यतः उस विकसित सामाजिक अवस्था को सूचित करती है जिसमें संस्थाएँ, नगर-जीवन, शासन, ज्ञान-व्यवस्था, तकनीक और संगठित सामाजिक संरचना विद्यमान हो। इस दृष्टि से संस्कृति जीवन का आंतरिक ढाँचा है और सभ्यता उसका अधिक संस्थागत एवं ऐतिहासिक रूप।

इसी पृष्ठभूमि में "हिन्दू" को समझना आसान होता है। यदि "हिन्दू" को केवल धर्म कहा जाए, तो वेद, उपनिषद, गीता, पूजा, पुनर्जन्म, कर्म, मोक्ष, योग और भक्ति जैसे तत्व सामने आते हैं; पर परिवार, संस्कार, पर्व, लोकाचार, कला, स्थापत्य और सामाजिक संस्थाओं की निरंतरता पूरी तरह व्यक्त नहीं हो पाती। यदि इसे केवल संस्कृति कहा जाए, तो इसकी व्यापकता सामने आती है, पर आध्यात्मिक-दार्शनिक केंद्र कम प्रत्यक्ष हो सकता है। यदि इसे केवल सभ्यता कहा जाए, तो इसकी ऐतिहासिक विशालता व्यक्त होती है, पर व्यक्तिगत साधना और आध्यात्मिक प्रयोजन का पक्ष दब सकता है। इसलिए "हिन्दू" को धर्म, संस्कृति, सभ्यता और जीवन-पद्धति—इन सभी के समन्वित रूप में समझना अधिक उचित है।

"जीवन-पद्धति" की अभिव्यक्ति भी इसी कारण सार्थक है कि हिन्दू परंपरा का प्रभाव केवल शास्त्र या मंदिर तक सीमित नहीं है। यह जन्म से मृत्यु तक संस्कारों, परिवार, विवाह, व्रत, पर्व, दान, तीर्थ, गुरु-शिष्य परंपरा, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ-चिंतन, योग-साधना और दैनिक व्यवहार तक फैला हुआ है। न्यायिक विमर्श में भी इस व्यापकता को रेखांकित किया गया है। हालांकि जीवन शैली को अंतिम अकादमिक परिभाषा नहीं कहा जा सकता, फिर भी यह संकेत अवश्य देता है कि हिन्दू परंपरा का क्षेत्र एक संकीर्ण मत-पंथ से कहीं अधिक व्यापक है।

इस प्रकार सबसे संतुलित निष्कर्ष यह है कि "हिन्दू" की सबसे व्यापक समझ सांस्कृतिक-सभ्यतागत है, जिसके भीतर धार्मिक और दार्शनिक तत्व केंद्रीय स्थान रखते हैं। इसलिए "हिन्दू: धर्म, संस्कृति, सभ्यता या जीवन-पद्धति?" का उत्तर किसी एक विकल्प में नहीं, बल्कि इनके समन्वय में निहित है। धर्म, परंपरा, रीति-रिवाज और सामाजिक संस्थाओं के स्तर पर भी हिन्दू परंपरा का स्वरूप बहुस्तरीय है। धर्म यहाँ केवल उपासना या मत-स्वीकार नहीं, बल्कि आचरण, कर्तव्य और जीवन-संतुलन से जुड़ा है। परंपरा उन मान्यताओं और व्यवहारों की धारा है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचरित होती हैं। रीति-रिवाज परंपरा के व्यावहारिक रूप हैं—जैसे संस्कार, विवाह-विधान, पर्व-उत्सव, श्राद्ध, व्रत, तीर्थ और सामूहिक अनुष्ठान। सामाजिक संस्थाएँ वे टिकाऊ ढाँचे हैं जिनमें परिवार, विवाह, कुटुंब, आश्रम व्यवस्था, गुरु-शिष्य परंपरा, मंदिर-मठ, तीर्थ-क्षेत्र और शिक्षा-संरचना सम्मिलित हैं।

इस प्रकार हिन्दू अवधारणा जीवन के निजी, पारिवारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर क्रियाशील दिखाई देती है। इसी कारण इसे केवल मान्यताओं का समूह कहना पर्याप्त नहीं है। यह एक जीवित परंपरा है, जिसमें शास्त्र और लोक, दर्शन और व्यवहार, साधना और सामाजिक जीवन, विविधता और एकता—सभी एक साथ उपस्थित हैं। यही इसकी विशिष्ट शक्ति भी है और व्याख्या की कठिनाई भी।

हिन्दू दर्शन का वैज्ञानिक और तार्किक आधार हिन्दू दर्शन विश्व की प्राचीनतम और विकसित दार्शनिक परंपराओं में से एक है। इसकी विशेषता यह है कि यह केवल आस्था पर आधारित नहीं, बल्कि तर्क, अनुभव और परीक्षण को भी महत्व देता है।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में सत्य की खोज को सर्वोच्च लक्ष्य माना गया, और इसी प्रयत्न से वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय और वैशेषिक जैसे दर्शनों का विकास हुआ। इन प्रणालियों ने ज्ञान, चेतना, पदार्थ, कारण-कार्य संबंध और मुक्ति जैसे प्रश्नों का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत किया। वेदान्त, जो उपनिषदों पर आधारित है, ब्रह्म और आत्मा की एकता का प्रतिपादन करता है। अद्वैत वेदान्त में शंकराचार्य ने ब्रह्म को अंतिम सत्य माना और आत्मानुभूति को ज्ञान का उच्चतम रूप बताया (Radhakrishnan, 1927)। सांख्य दर्शन प्रकृति और पुरुष के आधार पर जगत की व्याख्या करता है तथा 25 तत्त्वों के माध्यम से सृष्टि-विकास की क्रमिक समझ प्रस्तुत करता है (Chatterjee & Datta, 1950)। योग दर्शन, विशेषकर पतंजलि का "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" (योगसूत्र 1.2), मनोवैज्ञानिक अनुशासन और आत्मबोध की ऐसी प्रक्रिया प्रस्तुत करता है जिसे आधुनिक स्वास्थ्य और मनोविज्ञान के संदर्भ में भी महत्त्व मिला है। न्याय दर्शन ज्ञान के प्रमाणों—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—को व्यवस्थित करता है (Nyaya Sutra 1.1.3), जबकि वैशेषिक दर्शन द्रव्य, गुण और परमाणुवाद की दृष्टि से पदार्थ-विश्लेषण प्रस्तुत करता है (Hiriyanna, 1993)।

हिन्दू दर्शन केवल तत्त्वमीमांसा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक आयामों का भी विश्लेषण करता है। कर्म सिद्धांत कारण और परिणाम के सार्वभौमिक नियम को प्रतिपादित करता है; धर्म जीवन के नैतिक और सामाजिक संतुलन का आधार है; पुनर्जन्म आत्मा की निरंतरता का विचार प्रस्तुत करता है; और मोक्ष जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति का परम लक्ष्य माना जाता है (भगवद्गीता 2.22; 3.35; 4.17)। इसके साथ ही "वसुधैव कुटुम्बकम्" (महोपनिषद् 6.71–73) और "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋग्वेद 1.164.46) जैसे सूत्र हिन्दू दर्शन की वैश्विक और उदार चेतना को व्यक्त करते हैं। इसलिए हिन्दू दर्शन को तर्क, अनुभव, साधना और ज्ञान पर आधारित दार्शनिक परंपरा के रूप में समझना चाहिए।

यहाँ "वैज्ञानिक" शब्द का अर्थ आधुनिक प्रयोगशाला-विज्ञान के समान नहीं, बल्कि तर्क, अनुक्रम, अनुभव, प्रमाण और अवधारणात्मक स्पष्टता से है। हिन्दू दर्शन में किसी सिद्धांत को केवल श्रद्धा के आधार पर नहीं, बल्कि शास्त्रार्थ, चर्चा, वाद-विवाद, प्रमाण और साधना के स्तर पर परखा गया। न्याय का प्रमाणवाद, सांख्य का तत्त्व-विन्यास, योग का मनोअनुशासन और वेदान्त का आत्म-ब्रह्म संबंध—ये सब दर्शाते हैं कि भारतीय चिंतन ने अनुभव और बुद्धि दोनों को महत्व दिया। यही कारण है कि हिन्दू दर्शन में मतभेद होते हुए भी बौद्धिक संवाद की एक जीवित परंपरा दिखाई देती है।

कर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष की अवधारणाएँ भी इसी व्यापक दार्शनिक ढाँचे का भाग हैं। कर्म केवल धार्मिक अनुष्ठान का विषय नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व और नैतिक कारण-कार्य संबंध की धारणा है। पुनर्जन्म केवल विश्वास नहीं, बल्कि आत्मा की निरंतरता का दार्शनिक प्रतिपादन है। मोक्ष सांसारिक जीवन का निषेध नहीं, बल्कि बंधन, अज्ञान और दुःख से मुक्ति की उच्चतम अवस्था है। इस दृष्टि से हिन्दू दर्शन जीवन के अस्तित्वगत प्रश्नों—मैं कौन हूँ, जगत क्या है, कर्तव्य क्या है, और अंतिम मुक्ति का मार्ग क्या है—का व्यवस्थित उत्तर देने का प्रयास करता है।

11. **आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हिन्दू अवधारणा**

आधुनिक युग में "हिन्दू" अवधारणा ने नए ऐतिहासिक और बौद्धिक संदर्भों में पुनर्परिभाषा प्राप्त की। औपनिवेशिक अध्ययन, आधुनिक अकादमिक विमर्श, न्यायिक व्याख्याएँ और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद—इन सबने "हिन्दू" को नए अर्थ दिए। इस काल में "हिन्दू" केवल धार्मिक पहचान न रहकर सांस्कृतिक, सभ्यतागत और दार्शनिक परंपरा के रूप में पुनः उभरा।

औपनिवेशिक काल में यूरोपीय विद्वानों और प्रशासकों ने भारतीय समाज और धर्म का अध्ययन कर उन्हें वर्गीकृत करने का प्रयास किया। इसी संदर्भ में "Hinduism" शब्द को एक संगठित धर्म के रूप में अधिक स्पष्ट रूप दिया गया। मैक्स मूलर ने वेदों के अध्ययन से भारतीय ज्ञान परंपरा को पश्चिमी जगत में प्रतिष्ठित किया (Müller, 1879), जबकि मोनियर विलियम्स ने हिन्दू धर्म को विविध आस्थाओं और दार्शनिक प्रणालियों का समन्वित रूप माना (Monier-Williams, 1877)। आधुनिक विद्वानों—विशेषतः डी. एन. लोरेन्ज़न और रिचर्ड किंग—ने दिखाया कि "Hinduism" की आधुनिक अवधारणा आंशिक रूप से औपनिवेशिक और ओरिएंटलिस्ट संरचनाओं से भी प्रभावित रही (Lorenzen, 1999; King, 1999)।

भारतीय चिंतकों ने भी आधुनिक संदर्भ में हिन्दू अवधारणा की पुनर्व्याख्या की। स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म को सार्वभौमिक और सहिष्णु आध्यात्मिक परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया (Vivekananda, 1893), जबकि राधाकृष्णन ने इसे जीवन-दर्शन कहा (Radhakrishnan, 1927)। न्यायिक स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय ने ''Shastri Yagnapurushdasji v. Muldas Bhudardas Vaishya'' (1966) में हिन्दू धर्म की उदार और समावेशी प्रकृति पर बल दिया, तथा "Ramesh Yeshwant Prabhoo v. Prabhakar Kunte" (1995) में "way of life" जैसी अभिव्यक्ति के माध्यम से इसकी व्यापकता को रेखांकित किया।

वैश्विक स्तर पर भी हिन्दू दर्शन और संस्कृति को मान्यता मिली है। ब्रिटानिका हिन्दू धर्म को विश्व की प्राचीनतम जीवित धार्मिक परंपराओं में स्थान देती है (Encyclopaedia Britannica, 2023)। विल ड्यूरेंट और अर्नोल्ड टॉयनबी ने भारतीय आध्यात्मिक परंपरा को मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण बताया (Durant, 1935; Toynbee, 1961)। समकालीन संदर्भ में पर्यावरणीय संकट, मानसिक तनाव, सांस्कृतिक संघर्ष और नैतिक असंतुलन के बीच हिन्दू विचारधारा के तत्व—अहिंसा, समन्वय, प्रकृति के प्रति सम्मान, योग और ध्यान—विश्व स्तर पर प्रासंगिक हुए हैं।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया जाना इसी वैश्विक स्वीकार्यता का संकेत है (United Nations, 2014)। NEP 2020 में भी भारतीय ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक विरासत को शिक्षा में स्थान देने की दिशा में बल दिया गया है (Government of India, 2020)। समकालीन प्रासंगिकता के स्तर पर भी हिन्दू अवधारणा केवल अतीत की स्मृति नहीं रह जाती। योग, ध्यान, आयुर्वेद, प्रकृति-संतुलन, सह-अस्तित्व और वैश्विक परिवार जैसी अवधारणाएँ आज विश्व-स्तर पर चर्चित हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसे सूत्र अंतरराष्ट्रीय नैतिकता, शांति और सह-अस्तित्व के विमर्श में नए अर्थ ग्रहण कर रहे हैं। वहीं भारत के भीतर भारतीय ज्ञान परंपरा, शास्त्रीय दर्शन, सांस्कृतिक विरासत और सभ्यतागत अध्ययन पर बढ़ता बल यह संकेत देता है कि "हिन्दू" अवधारणा केवल ऐतिहासिक विषय नहीं, बल्कि वर्तमान शैक्षिक, सांस्कृतिक और वैचारिक विमर्श का भी जीवंत अंग है। फिर भी आधुनिक संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि "हिन्दू" की अकादमिक चर्चा और उसका राजनीतिक या लोकप्रिय उपयोग हमेशा समान नहीं होते। शोध-पत्र का दायित्व यह है कि वह न तो अवधारणा को संकीर्ण बनाए और न ही उसे इतना अस्पष्ट करे कि उसका ऐतिहासिक अर्थ ही समाप्त हो जाए। इसलिए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हिन्दू को एक विकसित, बहुस्तरीय और संदर्भ-संवेदी अवधारणा के रूप में पढ़ना अधिक उचित है।

12. **विश्लेषण एवं विमर्श (**Analysis and Discussion)

प्रस्तुत अध्ययन के वैदिक, पुराणिक, शिलालेखीय, ऐतिहासिक तथा आधुनिक अकादमिक स्रोतों के तुलनात्मक परीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि "हिन्दू" अवधारणा किसी स्थिर और एकरेखीय परिभाषा में बंद नहीं की जा सकती। भारतीय स्रोतों में 'सप्त-सिंधु', 'आर्यावर्त', 'भारतवर्ष' और 'जम्बूद्वीप' जैसे नाम इस भूभाग की आंतरिक सांस्कृतिक पहचान को व्यक्त करते हैं, जबकि बाह्य स्रोतों—आकेमेनिड अभिलेखों, यूनानी इतिहासकारों और अरब-फारसी लेखनों—में 'हिंद', 'अल-हिंद' और 'हिंदुस्तान' जैसे पद इस भूमि को बाहरी दृष्टि से एक विशिष्ट इकाई के रूप में स्थापित करते हैं। इससे स्पष्ट है कि "हिन्दू" की अवधारणा का निर्माण आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के समागम से हुआ।

दार्शनिक स्तर पर हिन्दू परंपरा की विशिष्टता उसकी बहुलतावादी और समन्वयवादी प्रकृति में है। वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय और वैशेषिक जैसे तंत्र सत्य की खोज को तर्क, अनुभव और प्रमाण पर आधारित करते हैं। दूसरी ओर, सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर पर हिन्दू अवधारणा परिवार, संस्कार, परंपरा, पर्व, तीर्थ, कला, साहित्य और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से जीवन के विविध स्तरों में व्याप्त दिखाई देती है। इसलिए "हिन्दू" को केवल धार्मिक पहचान कहना पर्याप्त नहीं; इसके भीतर सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और सामाजिक संगठन का दीर्घकालिक ताना-बाना विद्यमान है।

आधुनिक विमर्श और न्यायिक दृष्टि भी यही संकेत देती है कि "हिन्दू" को संकीर्ण पंथ-परिभाषा में सीमित करना उचित नहीं है। ऐतिहासिक प्रमाण इसे प्रारंभ में भौगोलिक पहचान के रूप में दिखाते हैं; सांस्कृतिक साक्ष्य इसे जीवन-पद्धति के रूप में प्रकट करते हैं; और दार्शनिक स्रोत इसे ज्ञान एवं मुक्ति-चिंतन की परंपरा के रूप में व्यक्त करते हैं। अतः व्यापक विश्लेषण यह स्थापित करता है कि "हिन्दू" की सबसे उपयुक्त समझ सांस्कृतिक-सभ्यतागत है, जिसके भीतर धार्मिक और दार्शनिक तत्व केंद्रीय स्थान रखते हैं।

इस विमर्श से एक और महत्त्वपूर्ण बात सामने आती है—"हिन्दू" की अवधारणा को समझने के लिए 'या' की जगह 'और' का प्रयोग अधिक उपयुक्त है। यह धर्म भी है और संस्कृति भी; यह सभ्यता भी है और जीवन-पद्धति भी; यह दर्शन भी है और सामाजिक संरचना भी। अंतर केवल इतना है कि इन आयामों का महत्व संदर्भ के अनुसार बदलता है। भाषिक इतिहास में इसका भौगोलिक अर्थ प्रमुख है, शास्त्रीय परंपरा में इसका दार्शनिक और धार्मिक आयाम अधिक स्पष्ट है, और सामाजिक विश्लेषण में इसका सांस्कृतिक-सभ्यतागत स्वरूप प्रमुख दिखाई देता है।

इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि "हिन्दू" को समझने के लिए एक बहुस्तरीय पद्धति आवश्यक है। केवल भाषाविज्ञान पर्याप्त नहीं, केवल धर्म-अध्ययन पर्याप्त नहीं, केवल समाजशास्त्र भी पर्याप्त नहीं। जब तक इतिहास, दर्शन, पाठ, संस्कृति, सामाजिक संस्थाएँ और बाह्य स्रोत—इन सबको साथ नहीं रखा जाएगा, तब तक हिन्दू अवधारणा की समग्र समझ संभव नहीं होगी। यही इस शोध का केंद्रीय बौद्धिक निष्कर्ष है।

13. निष्कर्ष **(Conclusion)**

उपरोक्त विश्लेषण, ऐतिहासिक साक्ष्यों, शास्त्रीय ग्रंथों तथा आधुनिक विद्वानों के विमर्श के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि "हिन्दू" एक बहुआयामी और व्यापक अवधारणा है, जिसे किसी एक संकीर्ण परिभाषा में सीमित नहीं किया जा सकता। इसका विकास एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रिया के माध्यम से हुआ, जिसमें भौगोलिक, भाषिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक और सामाजिक आयाम क्रमशः जुड़े। 'सिंधु' से 'हिन्दू' तक की भाषिक यात्रा, 'भारतवर्ष', 'आर्यावर्त' और 'जम्बूद्वीप' जैसे नामों की उपस्थिति, तथा फारसी, यूनानी और अरब स्रोतों में 'अल-हिंद' और 'हिंदुस्तान' का उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि "हिन्दू" मूलतः एक व्यापक सभ्यतागत पहचान के रूप में विकसित हुआ।

दार्शनिक स्तर पर हिन्दू परंपरा वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय और वैशेषिक जैसे तर्कप्रधान दर्शनों से समर्थित है, जो ज्ञान, सत्य और मुक्ति की खोज को प्रमाण, तर्क और अनुभव से जोड़ते हैं। कर्म, धर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष जैसी अवधारणाएँ मानव जीवन को नैतिक और आध्यात्मिक दिशा देती हैं, जबकि "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसे आदर्श इसकी उदारता और वैश्विक मानवतावाद को व्यक्त करते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दू अवधारणा परिवार, समाज, संस्कार, परंपराओं, पर्वों, कला, साहित्य और सामाजिक संस्थाओं में प्रतिबिंबित होती है। यही कारण है कि आधुनिक न्यायिक, अकादमिक और वैश्विक विमर्श में भी हिन्दू परंपरा को एक व्यापक जीवन-दृष्टि और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में समझा गया है।

अतः प्रस्तुत शोध का व्यापक निष्कर्ष यह है कि "हिन्दू" केवल एक धर्म नहीं, बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक, दार्शनिक और सभ्यतागत अवधारणा है। संस्कृति इसकी सबसे व्यापक अभिव्यक्ति के रूप में उभरती है, क्योंकि उसी के भीतर धर्म, दर्शन, परंपरा, सामाजिक संस्थाएँ और जीवन-मूल्य समाहित होते हैं। इसी आधार पर प्रस्तुत शोध में "हिन्दू" की निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तावित की जाती है—

"'हिन्दू' शब्द संस्कृत 'सिंधु' से व्युत्पन्न है, और इसका प्रयोग प्रारंभ में फारसी, यूनानी तथा अरब स्रोतों में भारतीय उपमहाद्वीप के निवासियों के लिए किया गया था। हिन्दू प्राचीन भारत से विकसित एक बहुआयामी सांस्कृतिक और सभ्यतागत परंपरा है, जिसमें धर्म, दर्शन, समाज और जीवन-शैली की विविधताएँ समाहित हैं, और जिसने भारतीय समाज को सदैव एकसूत्र में बाँधे रखा है।"

यह परिभाषा इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह "हिन्दू" को किसी एक संकीर्ण श्रेणी में सीमित नहीं करती, बल्कि उसकी ऐतिहासिक उत्पत्ति, सांस्कृतिक विस्तार, दार्शनिक गहराई और सामाजिक भूमिका—सभी को समग्र रूप से अभिव्यक्त करती है। साथ ही, यह भी स्पष्ट करती है कि हिन्दू अवधारणा का सम्यक् अध्ययन तभी संभव है, जब शब्द-व्युत्पत्ति, प्राचीन भारतीय स्रोत, बाह्य ऐतिहासिक साक्ष्य, दार्शनिक परंपराएँ और सामाजिक संस्थाएँ—सभी का समन्वित अध्ययन किया जाए। इस अर्थ में "हिन्दू" केवल अतीत का विषय नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता की दीर्घकालिक निरंतरता को समझने की एक केंद्रीय कुंजी है।

संदर्भ : (References)

Abul Fazl. (1927). *The Ain-i-Akbari* (H. Blochmann & H. S. Jarrett, Trans.). Calcutta: Asiatic Society.

Al-Biruni. (1910). *Alberuni's India* (E. C. Sachau, Trans.). London: Kegan Paul, Trench, Trübner & Co.

Durant, W. (1935). *The Story of Civilization: Our Oriental Heritage*. New York: Simon & Schuster.

Flood, G. (1996). *An Introduction to Hinduism*. Cambridge: Cambridge University Press.

Herodotus. (1858). *The Histories* (G. Rawlinson, Trans.). London: J. M. Dent.

Kent, R. G. (1953). *Old Persian: Grammar, Texts, Lexicon*. New Haven: Yale University Press.

King, R. (1999). *Orientalism and Religion: Postcolonial Theory, India and "The Mystic East"*. London: Routledge.

Lorenzen, D. N. (1999). Who Invented Hinduism? *Comparative Studies in Society and History*, 41(4), 630– 659.

Majumdar, R. C. (Ed.). (1951). *The Vedic Age*. Bombay: Bharatiya Vidya Bhavan.

Monier-Williams, M. (1877). *Hinduism*. London: Society for Promoting Christian Knowledge.

Müller, F. Max. (1882). *India: What Can It Teach Us?* London: Longmans, Green & Co.

Radhakrishnan, S. (1927). *The Hindu View of Life*. London: George Allen & Unwin.

Radhakrishnan, S. (1953). *The Principal Upanishads*. London: George Allen & Unwin.

Thapar, R. (2002). *Early India: From the Origins to AD 1300*. New Delhi: Penguin Books.

Vivekananda, S. (1998). *The Complete Works of Swami Vivekananda*. Kolkata: Advaita Ashrama.